ISSN: 2456–4397 RNI No.UPBIL/2016/68067 Vol-5* Issue-10* January-2021
Anthology : The Research

प्राचीन भारत में साझेदारी व्यापार–व्यवहार

Partnering Business Practices in Ancient India

Paper Submission: 15/01/2021, Date of Acceptance: 26/01/2021, Date of Publication: 27/01/2021

प्रताप विजय कुमार
सहयुक्त आचार्य
प्राचीन इतिहास, पुरातत्व एवं संस्कृति विभाग,
हीरालाल रामनिवास स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
खलीलाबाद, संत कबीर नगर, भारत

सारांश

प्राचीन भारत में सहकारिता या संघटक की भावना सर्वप्रथम आर्थिक क्षेत्र में स्पष्ट रूप में विद्यमान दिखायी देती है। बृहदारण्यक उपनिषद् के एक प्रसंग में उल्लेख है कि ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य, शूद्र मानवीय समाज के चार वर्णो के अनुरूप ब्रह्मा ने देवताओं में भी वर्गीकरण किया था, परन्तु केवल प्रथम दो वर्गो के निर्माण से वे इसलिए संतुष्ट नही रहे, क्योकि ये दोनो वर्ग सम्पत्ति उपार्जित नहीं कर सकते थें। अतः सम्पत्ति उपार्जन के निमित्त वैश्यों की उत्पत्ति की गयी जिन्हे गणशः संज्ञा से अभिहीत किया गया है। ये गणशः व्यक्तिगत प्रयास से नही अपितु सहकारिता की प्रवृत्ति से सम्पत्ति उपार्जित करने में समर्थ थे। वृहदारण्यक उपनिषद् का यह प्रसंग कालान्तर में परवर्ती वैदिक युगीन आर्थिक जीवन में सहकारिता के पर्याप्त विकसित स्वरूप का स्पष्ट उदाहरण प्रस्तुत करता है। यह भी ध्यातव्य है कि वैष्यों में ही गण या संघटक व्यवस्था की चर्चा उपनिषद् में की गयी है, इस रूप में दोनों ऊपर के वर्गो को पृथक किया गया है। इससे यह भी अनुमान होता है कि ब्राह्मणों एवं क्षत्रीयों में संघटित व्यवस्था धार्मिक एवं राजनीतिक प्रकार की थी, वह उतना अधिक महत्व नही प्राप्त कर सकी थी, जितना वैश्यों की सहकारिता का संघटन आर्थिक क्षेत्र में प्राप्त किया। यद्यपि यह भी ध्यातव्य है कि प्राचीन भारत में व्यापारियों में यह संघटन या सहकारिता तत्युगीन असुरक्षा के परिणामस्वरूप विकसित हुई। जिसका चरमोत्कर्ष श्रेणी संगठन के रूप में दिखाई देता है। श्रेणी वह विशिष्ट शब्द है, जो व्यापारी या शिल्पियों के संगठन का द्योतक है, इसकी परिभाषा में कहा भी गया कि यह समाज या भिन्न जाति के लेकिन समान व्यापार और उद्योग अपनाने वाले लोगों का संगठन था, जो संगठित गतिविधि का श्रेष्ठ उदाहरण प्रस्तुत करते है। सहकारिता की यह प्रवृत्ति कुछ अन्य रूपों में भी व्यवहृत् हुई। जिसके अन्तर्गत संभूय–समुत्थान के सिद्धान्त के आधार पर किया जाने वाला व्यापार–वाणिज्य सर्वथा उल्लेख्य है।

In ancient India, the spirit of co-operation or component is first visible in the economic sector. In a context of Brihadaranyaka Upanishad it is mentioned that Brahma also classified the gods according to the four classes of Brahmin, Kshatriya, Vaishya and Shudra human society, but they were not satisfied with the creation of only the first two classes, because these two classes were not satisfied. Could not acquire property. Therefore, for the acquisition of property, prostitutes have been created which are derived from noun. They were able to acquire property not by personal effort but by the tendency of co-operation. This passage of the Brihadaranyaka Upanishad provides a clear example of a sufficiently developed form of co-operation in later Vedic era economic life. It is also important to note that in the subjects, the gana or constituent system is discussed in the Upanishads, in which form both the above classes are separated. It also infers that the organized system of Brahmins and Kshatriyas was religious and political in nature, it could not achieve as much importance as the union of Vaishyas in the economic sector. However, it is also important to note that this association or co-operation among traders in ancient India developed as a result of tyrannical insecurity. Whose climax appears as a category organization. The category is the specific term that signifies the association of traders or craftsmen, its definition also states that it was an organization of people from a society or different caste but adopting the same trade and industry, which represent the best example of organized activity. . This tendency of co-operatives was also practiced in some other forms. Under which trade and commerce done on the basis of the principle of Sambhu-Samuthi is completely mentioned.

मुख्य शब्दः संभूय–समुत्थान, पण्य, तंतुवाय, कूटवाणिजजातक, शिल्पी, कर्मकर सहकारिता

Sambhuvi Samasthan, Merchandise, Tantuvai, Kutavanijajataka, Artist, Workman Cooperative

प्रस्तावना

प्राचीन भारत के आर्थिक जीवन में संघटित गतिविधियों का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण श्रेणी संगठन प्रस्तुत करता है। सहकारिता की यह प्रवृत्ति कुछ अन्य रूपों में भी अभिव्यक्त हुई। इस विषय से सम्बन्धित संभूय समुत्थान के सिद्धान्तों के आधार पर किये जाने वाले व्यापार का उल्लेख किया जा सकता है। संघटित गतिविधि के इन स्वरूप निश्चित उदाहरण बौद्ध जातक कथाओं से प्राप्त होता है। कुटवणिज जातक में दो व्यापारियों की कहानी है जो साझे में सम्मिलित होकर पण्य से लदी पांच गाड़ियॉ वाराणसी से ग्रामीण प्रदेश को ले गये। इसी ग्रन्थ में श्रावस्ती के दो व्यापारी साझा व्यापार करने हेतु सम्मिलित होकर पॉच सौ गाड़ियों के साथ पूर्व से पश्चिम की यात्रा पर निकल पड़े।[1] वावेरू जातक में वर्णन आता है कि संयुक्त रूप से व्यवसाय, व्यापार करने वाले कुछ व्यापारियों ने बावेरू राज्य में विचित्र भारतीय पंक्षियों को ऊँचें दर पर विक्रय किया। महावाणिज जातक में अन्यान्य व्यापारियों के अस्थाई रूप से साझेदारी रूप में व्यापार करने हेतु सम्मिलित होने का वर्णन है। बौद्ध जातक कथाओं के वर्णन में निस्सन्देह व्यापार की साझेदारी व्यवस्था की ओर संकेत करते है। कौटिलीय अर्थशास्त्र में साझेदारी व्यापार पद्धति का उल्लेख किया गया है।[2]

प्राचीन भारतीय धर्मग्रन्थों यथा–नारद स्मृति, वृहस्पति स्मृति एवं याज्ञवल्क्य स्मृति[3] में साझेदारी व्यापार के लिए पारिभाषिक शब्द –सम्भूय समुत्थान का उल्लेख मिलता है। इसके लिए इन ग्रन्थों में निश्चित नियमों का भी विधान किया गया है। नारद स्मृति में स्पष्ट उल्लेख है कि जहॉ वणिज इत्यादि मिलकर व्यापार करते है, वह सम्भूय समुत्थान कहलाता है, जो एक व्यापार पद है। और जहॉ अनेक साझीदार लाभ के लिए संयुक्त रूप से व्यापार करते है वहॉ संघटन के सामान्य कोष में दिया गया धन उनके कार्यो का आधार होता है। इसलिए प्रत्येक वणिज साझेदार का अपना अंश देना चाहिए।[4] इस प्रकार इस व्यवस्था का आधाभूत सिद्धान्त यह था कि आर्थिक लाभ के लिए एक से अधिक व्यक्तियों या व्यापारियों का संयुक्त होकर व्यापार –वाणिज्य करना। इस कार्य के लिए साझेदारी का प्रत्येक सदस्य साधारण कोष में जो समुदाय के मूलधन का काम करता था, उसमें अपना योगदान या अंश देता था। यह व्यक्तिगत अंशदान ही साझेदारी व्यापार पद्धति का आधार था।[5] नारद स्मृति के अनुसार प्रत्येक साझीदार की क्षति, व्यय, और लाभ उस अंश के अनुपात से होते है, जो उसके द्वारा सम्भूय समुत्थान के लिए दिया जाता है। इसका समर्थन वृहस्पति स्मृति में भी किया गया हैं। लेकिन कौटिल्य के अर्थशास्त्र एवं याज्ञवल्क्य स्मृति में कहा गया है कि लाभ आदि प्रत्येक व्यक्ति के अंशदान के अनुपात से या साझेदारों के आपसी पूर्व सहमति या निश्चय के अनुसार हो सकते है। इससे यह ज्ञात होता है कि आपस में मिलजुलकर व्यापार करने के इच्छुक साझेदारों के बीच एक संविदा या शर्तनामा तैयार होता था, जिसमें व्यापारिक प्रबन्ध के सामान्य सिद्धान्तों का निर्देश होता था। जिसके अनुसार अपने अतिरिक्त कौशल या विशेष ज्ञान के कारण लाभ का उससे अधिक अंश प्राप्त कर सकतें थें।

यह स्पष्ट है कि जातक कथाओं के काल में साझेदारी व्यापार की जानकारी विद्यमाना थी। कूटवाणिज्य जातक में कहा गया है कि पंडित और अतिपंडित नामक दो व्यापारी साझे में सम्मिलित हुए और वाराणसी से व्यापारिक वस्तु (पण्य) लदी पांच सौ गाड़ियॉ ग्रामीण प्रदेशों में ले गये जहॉ माल विक्रय करके अर्जित धन के साथ वाराणसी वापस आयें। जब धन बांटने का प्रश्न आया तो अतिपंडित ने कहा कि मुझे दो गुना हिस्सा मिलना चाहिए, क्योंकि तुम केवल पंडित हो और मै अतिपंडित हूँ। इस बात पर दोनों में विवाद उत्पन्न हुआ। इससे पता चलता है कि अतिपंडित पंडित से अपनी बात मनवाने के लिए प्रयत्न करता है, किन्तु असफल रहा और बाद में दोनों व्यापारियों ने लाभ का बराबर–बराबर बंटवारा किया ।[6] इस जातक कथा से स्पष्ट होता है कि यद्यपि यह सिद्धान्त सामान्यतः मान्य था कि किसी व्यक्ति के लाभ का अनुपात पण्य में उसके अंश पर आधारित होना चाहिए, लेकिन व्यापार में अतिरिक्त कौशल पर अतिरिक्त लाभ देने का विचार भी अन्यत्र दिखायी देता है।[7]

सम्भूय समुत्थान , की सफलता उसके सदस्यों पर निर्भर करती थी, इसलिए स्मृति ग्रन्थों में साझेदारों के चुनाव के लिए स्पष्ट नियमों का निर्देश भी मिलता है। वृहस्पति स्मृति में कहा गया है कि दूरदर्शी व्यक्ति को ऐसे व्यक्ति के साथ मिलकर व्यापार नही करना चाहिए जो आलसी, असमर्थ, रोगी, एवं मन्दभाग्य हो।[8] और ऐसे व्यक्ति के साझे में व्यापार करना चाहिए जो कुलीन , चतुर, कर्मण्य, बुद्धिमान, सिक्कों से परिचित, आय–व्यय में कुशल एवं ईमानदार हो।[9] नारद एवं याज्ञवल्य स्मृति में साझेदारी व्यापार से सम्बन्धित निर्देश है कि जब साझेदारों की अनुमति के बगैर या उनके स्पष्ट निर्देशों के विपरीत कार्य करता हुआ साझीदार अपनी असावधानी से साझी सम्पत्ति को यदि क्षति पहुँचाता है तो उसे स्वतः अपने सभी साझेदारों की क्षतिपूर्ति करनी चाहिए।[10]

और यहॉ तक कि संदेहास्पद विषयों और जब विश्वासघात का कोई कार्य प्रकाश में आया तो आपस में पूर्व कलह न होने पर वे परस्पर एक दूसरे के लिए मध्यस्थ और साक्षी का कार्य कर लेते है।[11]

यह भी ज्ञात होता है कि गैर जिम्मेदारी से किये गये अपने कार्यो के लिए व्यक्ति या साझेदार समूह के प्रति उत्तरदायी था, और उसके अन्य साथी उसका निर्णय करते थे या उसके मामले में साक्षी देते थें। यदि किसी व्यक्ति पर विश्वासघात का आरोप लगता तो उसे दिव्य परीक्षणों या अन्य प्रकार से उसके चरित्र की परीक्षा की जाती थी। [12] और यदि उसका अपराध सिद्ध हो जाता था तो उसे मूलधन वापस कर संगठन से निकाल दिया जाता था तथा दण्ड के रूप में उसको लाभ के अंश से वंचित

कर दिया जाता था।[13] अतः यह स्पष्ट होता है कि सामूहिक संगठन स्वयं मामले का निर्णय करता था और अपराधी व्यक्ति अपने कुकृत्यों के लिए किसी वाह्य व्यक्ति या सत्ता के प्रति उत्तरदायी नही था। सामूहिक संगठन व्यक्ति की मृत्यु के बाद भी उसके हितों की रक्षा करना सुनिश्चित करता था।

कर्मकर, कृषिकर्म, स्वर्ण, रजत, सूत, लकड़ी, पत्थर, और चमड़े से निर्मित वस्तुओं के उत्पादन की विविध कला, शिल्पों का व्यवहार भी साझेदारी स्वरूप में किया जाता था। किन्तु व्यापार–वाणिज्य के इन विषयों में साझेदारी का आधार प्रत्येक व्यक्ति या शिल्पी या व्यापारी का दिया गया मूलधन न होकर उसका कार्य कौशल तथा शिल्प ज्ञान होता था। और चूँकि इस प्रकार के विषय में विभिन्न व्यक्तियों या साझेदारों में मतभेद होना भी स्वाभाविक था, इसलिए लाभ में भी प्रत्येक व्यक्ति का अंश एक दूसरे से भिन्न था। वृहस्पति स्मृति के अनुसार सुवर्णकार या अन्य जैसे चांदी, तंतुवाय, लकड़ी, पत्थर, या चर्म का कार्य करने वाले शिल्पी संयुक्त रूप से अपने शिल्प का व्यवहार करते है तो उन्हे अपने कार्य के स्वभावानुरूप उचित अनुपात से लाभ का विभाजन करना चाहिए।[14] इसी आधार पर संयुक्त रूप से किसी घर अथवा मन्दिर का निर्माण करते हुए या किसी जलाशय को खोदते हुए या चमड़े की वस्तुओं का निर्माण करते हुए कर्मकरों के बीच उनका मुखिया पारिश्रमिक के दो भागों का अधिकारी है। इसी प्रकार संगीतज्ञों के बीच ताल देने वाले को डेढ़ हिस्सा और गायकों को समान अंश दिये जाने का विधान है। साथ ही चोर लुटेरों में भी आपसी बंटवारे पर इसी व्यापारिक साझेदारी के नियम के तहत विचार मिलता है। चोर और लुटेरें भी लूट का माल बंटवारा करते समय इन सिद्धान्तों का अनुपालन करते थें। उनका प्रमुख चार हिस्सा, अधिक पराक्रमी तीन हिस्सा और अधिक योग्य व्यक्ति को दो हिस्सा तथा अन्य सहयोगियों को समांशभागी माना गया है।[15] इसके विपरीत यदि उनमें से कोई बन्दी बना लिया गया तो उसे छुड़वाने के लिए व्यय हुए धन में सभी को समान अंशदान करना पड़ता था।[16] यह भी ध्यातव्य है कि ऋत्विज भी साझेदारी के इसी सिद्धान्त के अनुसार यज्ञकार्य तथा अन्य संस्कार कर्मकाण्ड सम्पन्न करवाते थें।[17]

विभिन्न जातक कथाओं में सामुद्रिक व्यापारियों के संगठन का उल्लेख मिलता है। बलाहस्स जातक में कहा गया है कि पांच सौ वणिकों (बनियों) ने अपने प्रधान (समूह प्रमुख) की अधीनता में सिंहल में व्यापार के उद्देश्य से एक जहाज लिया। पण्डर जातक में भी 500 व्यापारियों द्वारा एक जहाज प्राप्त करने का वर्णन मिलता है। सुप्पारक जातक में एक कथा वर्णित है, जिसमें सात सौ बनियों ने एक जहाज तैयार कर नौचालक नियुक्त किया और यात्रा में प्राप्त धन को आपस में विभाजित किया। बौद्ध जातक कथाओं में भूमि पर व्यापारियों की वाणिज्य विषयक गतिविधियों की चर्चा है। जरूदपान जातक में श्रावस्ती तथा वाराणसी के अनेक व्यापारियों के बड़े सार्थो का उल्लेख है, जिन्होने एक बड़े जेट्ठक की अधीनता में माल से लदी गाड़ियों के साथ व्यापार के लिए प्रस्थान किया। गुत्तिल जातक में वाराणसी के कुछ व्यापारियों का उल्लेख है जो व्यापार–वाणिज्य के लिए उज्जयिनी गये थें और वे एक ही साथ एक स्थान पर ठहरे तथा सामूहिक मनोरंजन किया जिससे स्पष्ट है कि वे सहकारिता की भावना से कार्य करते थें।[18] इन सभी प्रमाणों से भली–भॉति प्रमाणित होता है कि व्यापारी संगठित होकर व्यापार–वाणिज्य सम्बन्धी गतिविधियों का संचालन करते थें। साथ ही कुछ प्रमाणों से यह भी स्पष्ट होता है कि कभी–कभी यह संगठन स्थायी भी होता था।

अध्ययन का उद्देश्य

प्राचीन भारत में छठी शदी ई0पू0 से राजनीतिक जीवन में स्थायित्व प्रकट होने लगता है साथ ही महाजनपदों एवं गणराज्यों के उपरान्त एक साम्राज्य की स्थापना तक यह क्रियाशीलता दिखायी देती है। इस राजनीतिक स्थिरता का प्रभाव आर्थिक जीवन पर पड़ा और संघटित जीवन में श्रेणियों के द्वारा व्यापार–वाणिज्य की उन्नति हुई। आर्थिक क्षेत्र में इस प्रकार के संगठन का संकेत उपनिषदों एवं स्मृतियों के साथ–साथ प्राचीन भारतीय अभिलेखों एवं बौद्ध जातक कथाओं में मिलता है। अपने व्यवसायगत हितों की सुरक्षा के निमित्त श्रेणियॉ संगठित थी तथा व्यवसायिक एवं व्यापारिक श्रेणियों का संगठन एवं विकास राज्य की समृद्धि का सूचक था। उद्योग, शिल्प एवं व्यापारिक गतिविधियों के प्रगतिशील होने पर राज्य को प्रभूत मात्रा में लाभ प्राप्त होता था। इन व्यापारिक संगठनों के द्वारा व्यापार–वाणिज्य की वृद्धि के लिए नये–नये व्यापारिक नीतियॉ अपनायी जाती थी, जिसमें इन श्रेणियों या व्यापारिक संगठनों द्वारा व्यापार की उन्नति के लिए साझेदारी व्यापार को अपनाकर व्यवसाय करना भी एक पद्धति थी, जिसके साक्ष्य प्राचीन ग्रन्थों के विभिन्न सन्दर्भों में उपलब्ध होते है। व्यापारिक श्रेणियॉ समय या संविदा के पालन पर भी विशेष बल देती थी।[19] श्रेणियों द्वारा संविदा सम्बन्धी नियमों का कठोरता पूर्वक पालन करने का संदर्भ कौटिलीय अर्थशास्त्र में भी मिलता है।[20] वृहस्पति स्मृति में उल्लेख मिलता है कि श्रेणी का एक सदस्य भी यदि श्रेणी के नाम पर समझौता या संविदा करता है तो उसका पालन सभी सदस्यों को करना अनिवार्य था। श्रेणियों द्वारा संविदा तोड़ना दण्डनीय अपराध माना जाता था। इन्ही सभी सन्दर्भो के आलोक में प्राचीन भारतीय उन्नतिशील व्यापार के परिप्रेक्ष्य में साझेदारी युक्त व्यापार के भी अनेक सन्दर्भ दिखायी देते है। जिनके सन्दर्भ में प्रस्तुत शोध पत्र में उन साक्ष्यों का संकलन किया गया हैं।

निष्कर्ष

प्राचीन भारत की आर्थिक उन्नति में श्रेणी संगठनों का विशेष योगदान रहा है। श्रेणी वह विशिष्ट शब्द है जो व्यापारियों के संगठन का परिचायक है। इनकी संख्या विभिन्न युगों में अलग–अलग थी। बौद्ध जातकों में 18 श्रेणियों का उल्लेख है लेकिन वे कौन–कौन थी स्पष्ट नही है लेकिन प्राचीन अभिलेखों, स्मृतियों , एवं धर्मग्रन्थों से इनकी एक लम्बी सूची प्राप्त होती है। ये श्रेणियॉ सहकारिता के आधार पर व्यवहृत थी। जातक ग्रन्थों में उपलब्ध अनेक आनुषंगिक निर्देश निसन्देह व्यापार की साझेदारी पद्धति की ओर संकेत करते है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में साझा–व्यापार के लिये

संभूय–समुत्थान पारिभाषिक शब्द का प्रयोग हुआ है। निश्चित रूप से साझेदारी व्यापार के माध्यम से प्राचीन भारतीय व्यापार –वाणिज्य के क्षेत्र में विकास हुआ साथ ही साझेदारी के व्यवहृत नियम धार्मिक एवं सामाजिक क्षेत्र में भी व्यवहार में लाये जाने लगें।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *डॉ आर0सी0 मजूमदार– प्राचीन भारत में संघटिक जीवन– पृष्ठ–69*
2. *अर्थशास्त्र–पृष्ठ–185*
3. *नारद स्मृति –पृष्ठ–133, द्रष्टव्य– प्राचीन भारत में संघटित जीवन*
4. *वही– ''वणिक प्रभृतयोयत्र कर्म संभूय कुर्वते।*
   तत् संभूय समुत्थानं व्यवहारपदं स्मृतम्।।
   फलहेतोरूपायेन कर्म संभय कुर्वताम्।
   आधार भूतः प्रक्षेपस्तेनोत्तिष्ठेयुरशतः।।''
5. *डॉ आर0सी0 मजूमदार– प्राचीन भारत में संघटित जीवन।*
6. *वही– पृष्ठ–72*
7. *वही– पृष्ठ – 72, 73*
8. *वृहस्पति स्मृति अध्याय–14*
9. *प्राचीन भारत में संघटित जीवन– पृष्ठ– 71–73*
10. *नारद स्मृति–3, 5, याज्ञवल्क्य स्मृति–2, 263*
11. *वही– पृष्ठ– 337*
12. *प्राचीन भारत में संघटित जीवन– पृष्ठ–74*
13. *वही–*
14. *वही–*
15. *वही–*
16. *विवाद रत्नाकर (कात्यायन) पृष्ठ–126*
17. *याज्ञवल्क्य स्मृति– 2, 268, नारद स्मृति– 4,48–9*
18. *प्राचीन भारत में संघटित जीवन पृष्ठ–79–80*
19. *डॉ गीतादत्त– प्राचीन भारत में बैंक व्यवस्था – पृष्ठ–144–149*
20. *वही– पृष्ठ– 145*